इक्कीसवीं शताब्दी की चुनौतियाँ और हिंदी उपन्यास

विश्वविद्यालय हिन्दी-विभाग

ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, कामेश्वरनगर, दरभंगा

की पी-एच.डी. उपाधि के लिए प्रस्तावित

शोध-प्रारूप

संकाय-मानविकी

विषय-हिन्दी

शोध निर्देशक

प्रो० (डॉ०) विजय कुमार

हिन्दी विभाग

सह-प्रोफेसर इन्चार्ज

सब-डिविजनल गवर्नमेंट डिग्री कॉलेज

बेनीपुर, दरभंगा

अनुसंधायिका

वीणा कुमारी

पैट क्रमांक- 22090538

ग्राम- सिरुआ, थाना बहेड़ी,

जिला-दरभंगा, पिन -847101

शोध शीर्षक

इक्कीसवीं शताब्दी की चुनौतियाँ और हिंदी उपन्यास

प्रस्तावित शोध की भूमिका:-

इक्कीसवीं सदी का समाज अपने पूर्व की सामाजिक चेतना से अलग है। औद्योगिक विकास ने जहाँ मनुष्य के जीवन में परिवर्तन लाया वहीं यांत्रिक विकास ने जीवन को बहुत हद तक आसान बनाया। ग्लोबलाइजेशन के इस दौर में मनुष्य बहुत हद एक-दुसरे के करीब आए तो दूसरी ओर एक अलग तरह की पूंजीवादी व्यवस्था कायम हो रही है। मशीनीकरण ने जहाँ मज़दूरों, कामगारों के जीवन को प्रभावित किया है, वहीं प्रकृति भी इसके जद में है। उपभोक्तावादी संस्कृति बिना इसके परवाह किए कि प्रकृति पदत्त संसाधन सीमित है, इन संसाधनों की समाप्ति भविष्य में तय है, बावजूद मनुष्य आँख मूंदकर जल्द से जल्द इन संसाधनों का उपभोग कर लेना चाहता है। आज जिस हड़बड़ी के साथ लोग तरक्की करना चाहते हैं वह कहीं से भी अनुकूलित विकास का पैमाना नहीं हो सकता है। युद्ध बीसवीं शताब्दी में बरती गयी क्रूरता रही है, इक्कीसवीं शतब्दी इस तरह के अमानवीयता से खुद को बचा जा सकता था, बावजूद ऐसा होता हुआ नहीं दिखाई दे रहा है। खून के धब्बे आज भी हर मुल्क की ज़मीन पर बिखरे हुए दिखाई पड़ते हैं। अमानवीयता पहले से कहीं अधिक बढ़ती जा रही है। प्रकृति के प्रति निष्ठा कामचलाऊ और दिखावा मात्र का रह गया है। औद्योगिक विकास के नाम पर जंगलों को नेस्तनाबूद किया जा रहा है। खनन के नाम पर पठारों के सर कलम किए जा रहे हैं। जलाशयों को भरकर पानी का व्यापार फैलाया जा रहा है। मनुष्य इतने असंवेदनशील होते जा रहे हैं कि उनके लिए कत्ल अब महज़ वीडियो गेमिंग से अधिक कुछ भी नहीं रह गया है। विकास के नाम पर जो हो रहा है वह शायद ही किसी सभ्य समाज के लिए स्वीकृत हो, बावजूद निरंतर यह सब हो ही रहा है। हर मुल्क की सरकारें कमोवेश ऐसी स्थिति को या तो विकास कहने है या कुछ पाने के नाम पर न्युनतम खोने की बात कहकर मामला ख़त्म कर देते हैं।

इक्कीसवीं शताब्दी में पूँजीवाद, बाजारवाद, उपभोक्तावाद ने दुनियाभर को प्रभावित किया है। इतिहास संस्कृति और विचारधारा को न सिर्फ नजरंदाज किया है, बल्कि उनकी अहमियत भी पाठ्यक्रमों का महज एक कोना भर रह गया है। भूमंडलीकरण और मशीनीकरण ने हमारे समय-समाज और संस्कृति को बहुत हद तक बदल दिया है। सामाजिक ढ़ांचे में इतना परिवर्तन हुआ है कि चिन्तक अब उसे वैश्विक गाँव कहने से नहीं हिचकते हैं। जो व्यक्ति या समाज अपने को विस्तार देकर अपनी विचारधारा का दायरा व्यापक करना चाहता है वह शून्य मे धकेल दिया जाता है।

इक्कीसवीं शताब्दी के इस उत्तर-आधुनिक युग में दुनिया को अनेक तरह के चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। आज आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक तथा धार्मिक स्तर पर कई प्रकार की नयी चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है, जिसकी पिछली सदी में कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। औद्योगिक क्रांति और नव-उपनिवेशवाद ने ऐसे वातावरण की सृष्टि की है जहाँ स्वार्थ के आगे संवेदना की कोई अहमियत नहीं रह गयी है। पिछले दो दशक के साहित्य और समाज में कई तरह के परिवर्तनों को महसूस किए जा सकता हैं। इस संदर्भ में अमित कुमार सिंह लिखते हैं 'वैश्वीकरण ने प्राचीन एवं परंपरागत भारतीय समाज की बुनियादी आस्था को झकझोर कर रख दिया है भारत में व्यक्ति परिवार समाज और संस्कृति के समक्ष पुनर्परिभाषा का संकट उत्पन्न हो गया है, वैश्वीकरण ने भारत के समाज व संस्कृति के प्रत्येक पक्ष को प्रभावित किया है। इन परिवर्तनों में कभी भविष्य के खतरे की आहट सुनाई देती है तो कभी इनमें एक नए भविष्य गढ़ने का सुखद अहसास परिलक्षित होता है"। विशेषकर इक्कीसवीं सदी के प्रारंभ से ही अनेक प्रकार के परिवर्तन हो रहे हैं, जिसमें तकनीकी के साथ-साथ व्याक्ति, समाज और साहित्य में भी परिवर्तन देखने को मिल रहा है। नए युग और नए समाज को साकार करने के नाम पर पूंजीवाद की जटिल व्यवस्था ने हर क्षेत्र में अलगाव की स्थिति उत्पन्न कर दी। पुराने मूल्य खंडित हो रहे है और नए विचार मज़बूती से खुद को स्थापित कर रही है।

साहित्य इन बदलती हुई दुनिया को बड़ी बारीक नजरों से देखता-परखता हैं। साहित्य लेखन में उपन्यास एक ऐसी विधा है जो सामाजिक एवं मानवीय जीवन की व्यापकता को मज़बूती से प्रस्तुत

करने में सक्षम रहा है। उपन्यास जीवन के विविध पहलुओं से पाठकों को रूबरू करने में सक्षम विधा के रूप में जाने जाते हैं। एक उपन्यास में समय, समाज व जीवन की गतिविधियों को अभिव्यक्त करने के जितने अधिक अवसर होते है, उतने किसी अन्य विधा में शायद ही होती है। इक्कीसवीं सदी जिस उहापोह का सदी है उपन्यास इस सदी के वैचारिक भिन्नता और सामजिक असंतोष के साथ-साथ राष्ट्रवादी अवधारणा और राजनीति से गायब होते नीतिगत पहलुओं पर तो विचार करता ही है प्रकृति के साथ मानवीय असंवेदनशीलता को भी मुखर होकर सामने रखता है। हिंदी उपन्यास लेखन सामाजिक विषमताओं पर तो कुठाघात करता ही है साथ ही संभावनाओं के विविध आयाम पर भी अपनी राय रखते हैं। वर्त्तमान में उपन्यास लेखन यर्थाथ को नई दृष्टि से विश्लेषित करता है। समाज की विभिन्नताओं, विषमताओं आवश्यकताओं व समस्याओं की अभिव्यक्ति के लिए उपन्यास प्रभावशाली विधा के रूप में उभरा है। वैसे तो साहित्य की प्रत्येक विधा में कथा तत्त्व मूल रूप से विद्यमान रहता है, लेकिन उपन्यास जिस व्यापकता के साथ चीजों को देखता है वह महत्वपूर्ण हो जाता है।

उपन्यास को आधुनिक युग का महाकाव्य कहा जाता है, इसलिए तो बहुपठनीय विधा का पर्याय उपन्यास को माना कहा जाता है। उपन्यास में महाकाव्य की भाँति भूत, भविष्य और वतर्मान एक साथ संबोधित करने की महती संभावनाएं निहित है। इक्कीसवीं सदी के उपन्यासकार अपनी रचना से की जाने वाली महाकाव्यात्मक अपेक्षाओं से भली-भांति परिचित है। लगभग डेढ़ सौ साल की लम्बी यात्रा करते हुए वर्तमान का उपन्यास विधा ने लेखन में कई तरह की नवीनताएँ इजात की है। भाषा, भाव और समस्या चयन को लेकर आज का उपन्यासकार न सिर्फ सचेत है बल्कि उनकी दृष्टि बहुत व्यापक है। हिंदी उपन्यास काल्पनिकता, झूठी आदर्शवादिता और फूहर मनोरंजन से काफी उपर उठ चुका है।

इक्कीसवीं सदी के उपन्यासों में कई तरह की चुनौतियों का जिक्र मिलता है। विकास की नवीन अवधारणाओं के तहत जिस प्रकार से भारतीय गाँवों को दरकिनार किया जा रहा है। नकली और अस्थाई विकास की चकाचौंध जिस तरह से आम जीवन को भी आकर्षित कर रहा है वह विचारणीय

है। खेती-किसानी का संकट न सिर्फ कृषि प्रधान देश को संकट में लाकर खडा कर दिया है, बल्कि साढ़े छः लाख गाँवों के लिए भी कई तरह का संकट पैदा कर रहा है। फाँसी की संस्कृति का विकास क्या कोई भी सभ्य समाज में स्वीकृत हो सकता है? हाल के दशकों में किसानों की बेहिसाब आत्महत्या चिंताजनक है। इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यासों में इन समस्याओं की व्यापक चर्चा मिलती है। 'मधु कांकरिया' का उपन्यास 'ढलती सांझ का सूरज' हो या 'संजीव' का उपन्यास 'फाँस' दोनों ही में मानवीय सभ्यता के पतन की बानगी दिखाई देता है। हमेशा से यह कहने का चलन रहा है कि 'साहित्य समाज का दर्पण होता है' यह बात प्रयोगशालाओं में मनुष्य पैदा करने वाले लोगों को भले नागवार लगे लेकिन साहित्य मन उस स्याह और घुप्प अन्धकार को भी देख लेते हैं, जहाँ सबकुछ काला और धब्बेदार है। भारत हमेशा से गाँवों का देश रहा है। शहरीकरण की आंधी भले विस्थापित मज़दूरों को कलकत्ता, मुंबई ,दिल्ली, पंजाब और न जाने देश के और कितने अलग-अलग शहरों में विस्थापित कर दिया है, बावजूद भारत गाँवों का देश बना हुआ है। खेती-किसानी यहाँ की सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था मानी जाती है। ऐसे में ग्राम की अवधारणा गाँव के लोगों की सामूहिकता और संवेदनशीलता से मानी जाती रही है। हाल के दिनों में संवेदनाहीनता, विस्थापन एवं पलायन ने मानवीय मूल्यों को बहुत अधिक कमजोर किया है।

विकास की अवधारणा अत्यन्त विस्तृत ही नहीं बाल्क जटिल और दुर्बोध भी है, हिंदी उपन्यासों में इसका चित्रण बहुत व्यापक स्तर पर हुआ है। इक्कीसवीं सदी के उपन्यासकारों में कई नाम महत्वपूर्ण है, जिनकी लेखनी उपन्यास लेखन को नई ऊर्जा और उंचाई प्रदान करता है। अमरकांत, काशीनाथ सिंह, संजीव, अलका सरावगी, रमेशचंद्र शाह, मृदुला गर्ग, नासिरा शर्मा, चित्रा मुद्गल, कुणाल सिंह, नीलोत्पल मृणाल, चिरंजीव, प्रियकांत अखिलेश, रणेंद्र, गीतांजलि, गीताश्री, सिनीवाली, राकेश कायस्थ आदि उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में पर्यावरणीय विघटन, विस्थापन की त्रासदी, सामाजिक अंतर्द्वद, आर्थिक विषमताओं, मानवीय असंवेदनहीनता, राजनीतिक-नैतिक पतन आदि को को अपने लेखन का आधार बनाया है।

समकालीन उपन्यासों में जल-जंगल और जमीन को लेकर किए जा रहे संघर्षों को मुखरता से जगह मिला है। कोर्पोरेट घराने और राजनैतिक महकमो की जुगलबंदी ने आम जीवन को प्रभावित किया है। मनुष्यता को बाज़ार में सरेआम, सरेराह जलील किया जा रहा है। 'हसदेव अरण्य' को लेकर होने वाला आंदोलन सामान्य घटना नहीं है। लद्दाख जैसे संवेदनशील जगहों को लेकर हजारों लोग आन्दोलन कर रहे हैं। मुंबई के 'आरे' में काटे जाने वाले जंगल या फिर नर्मदा नदी पर बनाए जा रहे डैम से किसे लाभ होगा? किनके जंगलों और घरों को तबाह किया जाएगा! यह विचारणीय है। इक्कीसवीं सदी के उपन्यासों में धार्मिक उन्माद और जातिगत हिंसा पर भी विचार किया गया है। राकेश कायस्थ का उपन्यास 'रामभक्त रंगबाज़' धर्म की नाम पर फैलाई जा रही हिंसा की बानगी पेश करता है। हिंसा हमेशा ही समाज के विकास में बाधक रही है। वर्त्तमान दौर में राष्ट्रवाद नवराष्ट्रवाद और अखंड राष्ट्रवाद की जो परिभाषाएं गढ़ी जा रही है वह समाज के विकास में बड़ा बाधक है।

इक्कीसवीं सदी के उपन्यासकार इन मुद्दों को लेकर सचेत है। वे राम-रहीम के भाईचारे को पुनः सजीव होते देखना चाहते हैं, आत्महत्या की संस्कृति का मुखालफत करते हैं। स्त्री-जीवन के संघर्ष को हुबहू कहना चाहते हैं। लिंग-भेद जैसी व्याधि पर खुलकर अपनी राय रखते हैं। वेश्यावृत्ति जैसी समस्याओं पर बेबाक बोलते हैं। वृद्धावस्था और वृद्धाश्रम की बढ़ती संख्या को लेकर चिंतित है। आपसी भाईचारे को फिर से मज़बूत करने की दिशा में कुछ नया और महत्वपूर्ण लिखना चाहते हैं। समकालीन लेखक समतावादी सामाजिक ढाँचे को और अधिक मज़बूत बनाने की दिशा में आगे बढ़ते हुए दिखाई पड़ते हैं।

किसानी जीवन की त्रासदी पर लिखा संजीव का उपन्यास 'फाँस' कई मायने में अद्भुत है। खेती-किसानी के संकट को लेकर लिखा गया यह उपन्यास जहाँ एक ओर विदर्भ के भूमिहीन किसानों की व्यथा-कथा बयान करता है, वहीं देशभर में हो रहे किसानों की आत्महत्या के ज़िंदा सच को सामने लाता है। उपन्यास के समर्पण भाग में संजीव लिखते हैं कि 'सबका पेट भरने और तन ढकने वाले देश के किसानों और उनके परिवारों को जिनकी हत्या या आत्महत्या को हम नहीं रोक पा रहे है। किसान आत्महत्याएँ ही इस उपन्यास की पृष्टभूमि रही है'। इस देश में बहुत ऐसे किसान है जिनके पास खेती-

किसानी के अलावा कोई चारा नहीं है। किसान शिबू की बेटी कलावती कहती है कि “इस देश के सौ में से चालीस ‘शेतकरी’ आज ही खेती छोड़ दें अगर उनके पास कोई दूसरा विकल्प हो। 40 लाख किसानों ने तो किसानी छोड़ भी दी है”।

21वीं शताब्दी के हिंदी उपन्यासों में पर्यावरणीय संकट को इस समय जोर-शोर से उठाया जा रहा है। पर्यावरण से जुड़े मुद्दे एवं पश्नों को इस युग के उपन्यासो ने बेहद गंभीरता से उठाने का प्रयास किया जा रहा है। उन कारणों को भी चिन्हित करने का प्रयास किया जा रहा है, जिसकी वजह से ये समस्याएँ निरंतर विकराल रूप लेती जा रही है। जल, जंगल और जमीन को बड़े ही असंवेदनशीलता के साथ नष्ट किया जा रहा है। जल की समस्याएँ इतने विकट हो चुके हैं कि जन-जीवन संकट के मुहाने पर आ खडा है। कई देशों में यह संकट इतना बड़ा और विकराल हो गया है कि उसने अपने नागरिकों को नहाने तक पर पाबंदी लगा दिया है। आंकड़ों के अनुसार चालीस प्रतिशत जनसंख्या के पास न्यूनतम स्वच्छ पानी नहीं है। जल संकट का प्रमुख वजह है हाल के दिनों में पर्यावरणीय अंसतुलन के साथ-साथ मानवीय क्रूरता है। एक अनुमान के अनुसार आनेवाले वर्षों में आबादी बढ़ने से विश्व के करीब दो तिहाई जनसंख्या पानी की समस्या से तबाह होगी। इस संदर्भ में नासिरा शर्मा का उपन्यास 'कुंइयाज़ान, महत्वपूर्ण है। जिसमें पानी की गंभीर समस्या को लेकर चिंता व्यक्त की गयी है “मुहल्ले में कुएँ वर्षों पहले पाट दिये गये मुहल्ले के एक दो घरों में हैंडपंप थे जो वर्षों से खराब पड़े हुए थे। मस्जिद वाली गली से मिली अंदर वाली गली थी। वहाँ पक्के बड़े-बड़े घर थे। उनके यहाँ भी पानी का हाय-तौबा मची हुई थी। शिव मंदिर के पूजारी भी बिना नहाएं परेशान बैठे हुए थे। उन्होंने न मंदिर धोया न भगवान को भोग लगाया था। उनके सारे लोटे-गगरे खाली लुढ़के पड़े थे। नल की टोटी पर कई बार ‘कौआ’'पानी की तलाश में आ-आकर बैठ- उड़ चुका था।”

यह केवल विदर्भ का मामला नहीं है। भारतीय गाँवों को लेकर जो भी विकासात्मक अवधारणा रही हो लेकिन आत्महत्या के पदचिन्हों को झुठलाया नहीं जा सकता है। लेखिका ने इस एक चित्र के माध्यम से पूरे देश की संघर्षरत जनता को एक ही कोलाज में समेट दी है। क्या बड़े, क्या छोटे, क्या

अमीर, क्या गरीब, मंदिर-मास्जद, जीव-जंतु इत्यादि सबकी अपनी-अपनी समस्याएँ है। भूमंडलीरण ने समाज, परिवार और मानवीय मूल्यों की परिभाषा को बदल कर रख दिया है। इस बाजारवादी संस्कृति के कारण व्यक्ति अपने माता-पिता को भी विकास में रोड़ा मानने लगा है। आज की युवा पीढ़ी भूल गयी है कि माता-पिता उनकी भलाई के लिए सोचते हैं, व्यक्ति की महत्वकांक्षा इतनी बढ़ गयी है कि वे अपने अलावे कुछ भी देखना नहीं चाहते। काशीनाथ सिंह का उपन्यास 'रेहन पर रग्घु' साहित्य जीवन के इन्हीं ऊहापोहों को नए सिरे से रेखांकित करता है। 'रेहन पर रगघु' नामक उपन्यस में वे लिखते हैं 'लॉ ऑफ ग्रेविटेशन का नियम केवल पेड़ो और फलों पर लागू नही होता मनुष्य और संबंधों पर भी लागू होता है। हर बेटा-बेटी के मां बाप पृथ्वी है। बेटा उपर जाना चाहता है और उपर-थोड़ा सा और उपर माँ बाप उसे अपने आकर्षण से नीचे खीचते हैं। आकर्षण संस्कार का भी हो सकता है प्यार का भी मोह-माया का भी। मंशा गिराने की नहीं होती मगर गिरा देते हैं।'

आज व्यक्ति सुविधाभोगी हो गया है, वे अपनी शर्तों पर आधुनिकता और भूमंडलीकरण के गुण-दोष को स्वीकार करते हैं। व्याक्ति के जीवन-शैली में काफी बदलाव आया है। युवा वर्ग अब केवल मौज-मस्ती को अधिक अहमियत देने लगे हैं। वे बहुत कम समय में बहुत कुछ कर गुजरने की हड़बड़ी में है। उनके जीवन में अर्थ (धन) सबसे ज्यादा महत्व रखता है। वे हर एक चीज खरीद लेना चाहते है, चाहे वह संवेदनशीलता ही क्यों न हो। युवाओं के बदलती मानसिकता को व्यक्त करते हुए काशीनाथ सिंह लिखते है 'ये नई नस्ले पैदा हुई थी गाँव में तभी से जब से गाँव में बिजली के खंभे, केबल, ट्यूवेल, पंपिंगसेट, दवाखाना आये थे, जातियों की पार्टीया आई थीं, हर तीसरे घर में फौज में किसी ना किसी की भर्ती हुई थी, सवर्णो में एक नस्ल रिसर्च और कोचिंग करने वालों की थी, जो शहर से या किसी फौजी के घर से बोतल हासिल करते और रात पंपिंग सेट पर बिताते।' नैतिक मूल्यों का पतन जिस तेजी से हुआ है संभवतः ऐसा पहले कभी नहीं हुआ था। मशीनीकरण के इस युग में लोग रोबोट बनते जा रहे हैं। संवेदना के स्तर पर भी मनुष्य काफी बदल गए हैं। राजनीति-भष्ट्राचार न सिर्फ समाज को प्रभावित किया है बल्कि आर्थिक जीवन को भी प्रभावित किया है। प्रकृति के प्रति भी लोगों के भीतर

क्रूरता आयी है। जंगल को काटकर जंगली प्राणी को बेघर करना किसी भी सभ्य देश के लिए न्यायोचित नहीं हो सकता है। एटम पर आसीन होकर लोग चाँद पर चढ़ गए बावजूद उनके भीतर की आमनावियता ज़िंदा है। हाल के वर्षों में इसका बड़ा उदाहरण हमें देखने को मिलता है। कोरोना काल विभीषिका असंवेदनशीलता की कई कहानी कहती है। भले लोग उस पीड़ा से निजात पा लिया हो, लेकिन अव्यवस्था की मार को भुलाया नहीं जा सकती है। लाशें नदियों में तैरकर बैतरनी पार नहीं होना चाहती थी, व्यवस्था ने उन्हें ऐसा करने पर मजबूर कर दिया था। प्रयागराज हो या दिल्ली हर जगह अंतिम संस्कार की मारा-मारी थी। यह कहा जा सकता है कि 'दफ्न है जो बात, अब उस बात को मत छेडिये' लेकिन सच यह है कि व्यवस्था की नाकामी ने जुम्मन को इस संसार में अकेला कर दिया।

प्रस्तावित शोध विषय की आवश्यकता:-

उपन्यास का शब्दगत अर्थ है 'समीप रखना' अर्थात वह वस्तु या कृति जिसको पढ़कर स्वयं का या सामीप्य संबंध का परिवर्तन संभव हो। इसमें जीवन का प्रतिबिंब स्पष्ट दिखाई पड़ते है। हमारी ही कथा-व्यथा, हमारी ही भाषा में कही गयी है। आज जिस विधा के लिए इस शब्द का प्रयोग किया जाता है उसकी प्रकृति को स्पष्ट करने में यह शब्द समर्थ है। उपन्यास में जीवन की सामीप्यता अधिक चित्रित होती है। गद्य की प्रमुख विधाओं में उपन्यास सबसे आधुनिक विधा है। साहित्यिक दृष्टि से उपन्यास को आधुनिक युग की उपज माना गया है, क्योंकि इसमें जीवनानुभव के प्रत्येक क्षेत्र के राग-विराग अभिव्यक्त हुआ है। हिंदी उपन्यास लगभग डेढ़ शताब्दी से अधिक की यात्रा पूरी कर चुका है। अपनी इस लंबी यात्रा में सदैव इस विधा ने अपनी जनपक्षधरता सिद्ध की।

बीसवीं सदी के अंतिम दशक में उपन्यास लेखन के क्षेत्र में कई महिला लेखिकाओं ने विशिष्ट ख्याति आर्जित की। स्त्री लेखन की भाँति दलित और आदिवासी लेखन भी खूब चर्चा में है। वास्तव में हिंदी उपन्यास नित नवीन उंचाइयों को छू रहा है। समाज के प्रत्येक वर्ग के साथ कैसे न्याय हो, उन्हें समुचित अधिकार मिले, हकमारी के खिलाफ कैसे आवाज बुलंद किया जाय आदि की दिशा में

वर्तमान उपन्यास लेखन जिम्मेदारी से आगे बढ़ता हुआ दिखाई दे रहा है। उपन्यासकार साधारण मनुष्य के जीवन-गाथा को बिना लाग-लपेट के कहने में समर्थ है। इक्कीसवीं सदी के उपन्यास उन समस्याओं पर भी गंभीरतापूर्वक विचार कर रहा है जिन विषयों पर बहुत कम चर्चाएँ हुई हैं। लगभग एक दशक से आदिवासी और किन्नर विमर्श साहित्य लेखन को खासा प्रभावित किया है। प्रवासी लेखन ने तो एक अलग ही मुकाम हासिल किया है। सुषम वेदी, सुधाओम ढींगरा, जकिया जुबैरी, उषा वर्मा, उषा राजे सक्सेना, दिव्या माथुर आदि ने पश्चमी दुनिया में हो रहे सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तन पर काफी कुछ लिख रहे हैं। सामाजिक,आर्थिक, विषमताओं के खिलाफ इन रचनाकारों की सामूहिक आवाज बहुत मजबूत है। राजनीतिक, वैयक्ति, पर्यावरणीय एवं विविध विमर्शों को नई ऊर्जा प्रदान किया है। जल-जंगल, जमीन, और दुनियाभर के गाँवों की माली हालत भी इक्कीसवीं सदी के उपन्यासों के केंद्र में है।, शहरी एवं नगरीय जीवन की उहापोह को भी इस विधा ने मुकम्मल तरीके से दर्ज किया है। विघटित पारिवारिक संरचना और अकेलापन आदि आज के लेखन का मुद्दा है, जैसे नगर, महानगर, भाषा, टेक्नोलॉजी, स्त्री-पुरुष संबंध, दलित, थर्ड जेंडर, वैश्यावृत्ति पर भी पाठकों का ध्यान आकर्षित किया है। विविध राजनीतिक विषयों के साथ-साथ इक्कीसवीं सदी के रचनाकारों ने विस्थापन की त्रासदी, साम्प्रदायिकता, आर्थिक असमानता, पर्यावरणीय विघटन, मानवीय संवेदना आदि विषयों पर अपनी चिंता व्यक्त किया है। साम्प्रदायिकता बनाम आंकवाद के इस जंग में हर रोज मानवता हार रही है। विस्थापन की पीड़ा का बखान भी इस सदी के उपन्यासों में हुआ है।

हिंदी उपन्यास का कथ्य आज इतना विस्तृत और बहुआयामी है कि पिछली सदी की तुलना में वह बहुत आगे नजर आते है। उपन्यास को विचार-विमर्श का गंभीर माध्यम बनाने के लिए जो नई कथा-शैलियाँ अपनाई गयी है वह विस्मयकारी है। कुछ उपन्यास महज हिंदी साहित्य तक सीमित नहीं है उनकी पहचान वैश्विक है। उन्हें विश्व उपन्यास के उन श्रेठ कृतियों (बेस्ट सेलर्स) के सम्मुख सगर्व रखा जा सकता है।

इक्कीसवीं सदी के इस दौर में आवश्यकता इस बात की है किसी भी पूर्वाग्रहों एवं राजनीति से मुक्त होकर उपन्यास विधा की श्रेष्ठता का सही मूल्यांकन किया जाए। आज जरूरी हो गया है कि इन बहुमूल्य निधि का बिना पक्षपात के सम्यक मूल्यांकन हो। शोध कार्य इस दिशा में अतिआवश्यक है। इक्कीसवीं सदी में तेजी से बदलती हुई दुनिया को गंभीरता से जानने-समझने की जरुरत है। आज जब साहित्यकारों में आपसी खेमेबाजी बढती जा रही है, ऐसे में एक शोधार्थी की जिम्मेदारी और बड़ी हो जाती है। आर्थिक विषमताओं का धत्ता बताने वाले तीसरी दुनिया रंगभेद के चपेट में है। बहुराष्ट्रीय कम्पनीयों की आर्थिक हितों की सुरक्षा के लिए नागरिक हितों की अनदेखी की जा रही है। 'सूचना का अधिकार' प्राप्त करना मुश्किल होता जा रहा है। उपभोक्तावादी संस्कृति के प्रचार-प्रसार, विकास के नशे में चूर मानव द्वारा जल, जंगल जमीन की को नष्ट करने का काम किया जा रहा है। मानवीय संवेदनाओं का क्षरण, नैतिक मूल्यों में गिरावट, विस्थापन एवं पलायन की बाध्यता एवं आर्थिक असमानता से निपटना आम बात नहीं है। आज का उपन्यास चुनौतियों और प्रतिरोध की भावनाओं को विकसित करने का सशक्त माध्यम है।

इस शोष कार्य के द्वारा यह देखने का प्रयास किया जाएगा कि तेजी बदलती हुई दुनिया में साधारण जन कहाँ खड़े हैं? उनके जीवन-यापन और विकास के पैमाने क्या है। विमर्शों की दुनिया उन संघर्षरत किसानों के साथ कहाँ तक न्याय कर पाई है। आज जब खेती-किसानी का संकट बड़ा हो गया है, ऐसे में किसानों की बात करने वाली रचनाओं के सम्यक मूल्यांकन होना आवश्यक है। आज प्रकृति को लेकर कुछ सामाजिक कार्यकर्ता अपनी जान की बाज़ी लगाकर गंगा को दूषित होने से बचाना चाहते हैं, लेकिन ऐसा करते हुए वे मारे गए। जंगल को बचाने वाले आदिवासी लोग आन्दोलन करते हुए मारे गए। सात सौ से अधिक किसानों की मौत न्यूनतम समर्थन मूल्य की मांग को लेकर दिल्ली की अलग-अलग सीमाओं पर हो गयी। स्त्रियों के साथ बलात्कार की घटनाएं बढ़ती जा रही है। भेदभाव की संस्कृति चाँद पर सफल लैंडिग के बाद भी जारी है। दलितों के साथ आज भी भेदभाव जारी है। साम्प्रदायिकता इस दौर की सबसे बड़ी समस्या बन गयी है। इन मुद्दों पर गंभीरता से विचार करना इस शोध-प्रबंध का अहम हिस्सा होगा।

शोध विषय का महत्व:-

प्रत्येक शोध कार्य का अपना महत्त्व होता है। 'इक्कीसवीं शताब्दी की चुनौतियाँ और हिंदी उपन्यास' विषयक शोध कार्य का भी अपना महत्त्व है। तेजी से बदलती हुई दुनिया में मानवीय संवेदना और मूल्यों में अत्यधिक बदलाव आया है। एक तरफ जहाँ भूमंडलीकरण, वैश्विकरण, बाज़ारवादी व्यवस्था रोजगार के अनेकों अवसर प्रदान कर रहा है, वहीं दूसरी तरफ असंवेदनशीलता भी चरम पर है। पूँजी की असमानता ने साधारण जीवन को मुश्किल में डाल दिया है। इक्कीसवीं शताब्दी की चुनौतियाँ भी बड़ी होती जा रही है। हिंदी उपन्यासों में जहाँ एक तरफ विदर्भ के किसानी संकट मुंह बाए दिखाई पड़ते हैं वहीं पंजाब, हरियाणा, राजस्थान समेत देश के अलग-अलग हिस्सों में किसानी संकट गहराती जा रही है। ऐसे में एक शोधार्थी की जिम्मेदारी होती है कि वे मानवीय संकट को गंभीरता से समझकर आम जनों को रूबरू कराए, साथ ही इन संकटों के लिए जिम्मेदार कारकों को भी चिन्हित करें। मेरा मानना है कि इस दिशा में ''इक्कीसवीं शताब्दी की चुनौतियाँ और हिंदी उपन्यास' शोध कार्य कई नवीन संभावनाओं और चुनौतियों की पहचान करने में सफल होंगे। साथ ही सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक मूल्यों पर भी नए सिरे से विचार किया जाएगा।

पूर्वकृत शोध कार्य:-

साहित्य सर्वेक्षण के दौरान मैंने विभिन्न संस्थानों एवं विभिन्न इंटरनेट साइट, शोध गंगा एवं शोध गंगोत्री आदि पर प्रस्तुत विषय से संबंधित आंकड़ो का संकलन किया। मेरे संज्ञान में इस विषय पर अभी तक कोई कार्य नहीं हुआ है। इक्कीसवीं शताब्दी के उपन्यासों को आधार बनाकर कुछ शोधकार्य हुए हैं जो निम्नलिखित है-

1. इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यासों में प्रेम संबंधों का बदलता स्वरूप- दयालबाग विश्वविद्यालय, आगरा (उत्तर प्रदेश) 2003
2. इक्कीसवीं सदी के उपन्यासों में ग्रामीण क्षेत्रो से पलायन एवं विस्थापन की समस्या के सामाजिक-सांस्कृतिक प्रभाव - दयालबाग विश्वविद्यालय, आगरा (उत्तर प्रदेश)

3. हिन्दी उपन्यास और भूमंडलीकरण : एक विवेचना (ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय दरभंगा, 2020

4. इक्कीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक के हिंदी उपन्यासों में सांस्कृतिक चेतना (महर्षि दयानंदविश्वविद्यालय, रोहतक हरियाणा 2015

5. इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक के हिंदी उपन्यासों में स्त्री विमर्श - केन्द्रीय विश्वविद्यालय राजस्थान 2021

6. इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक के हिंदी उपन्यासऔर वैश्वीकरण- महात्मा गाँधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय वर्धा, महाराष्ट्र

7. इक्कीसवीं सदी की चुनौतियाँ और हिंदी उपन्यास" एक मौलिक शोध कार्य होगा, जिसमें इक्कीसवीं शताब्दी में उत्पन्न हुए चुनौतियों पर लिखे गये हिंदी उपन्यासों का अध्ययन किया जायेगा।

प्रस्तावित शोध का आधार ग्रन्थ सूचि:-

1. कितने पाकिस्तान – कमलेश्वर- राजपाल एंड सन्स प्रकाशन (2000)
2. कलि कथा- वाया वायपास -अलका सरावगी, साहित्य अकादमी (2008)
3. दौड़-ममता कालिया- वाणी प्रकाशन (2023)
4. रह गयी दिशाएँ इसी पार-संजीव -राजकमल प्रकाशन (2011)
5. यह गांव बिकाऊ है-एम एम चंद्रा (2019)
6. एक ब्रेक के बाद - अलका सरावगी - राजकमल प्रकाशन (2008)
7. कुईया जान - नासिरा शर्मा - सामयिक प्रकाशन (2005)
8. मरंगगोड़ा नीलकंठ हुआ- महुआ माजी राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पटना (2012)
9. फाँस - संजीव (2015) वाणी प्रकाशन (2015)

10. रेत - भगवान दास मोरवाल- राजकमल प्रकाशन (2013)
11. रेहन पर रग्घु-काशीनाथ सिंह - वाणी प्रकाशन (2015)
12. आज बाजार बंद है -मोहनदास नैमिशराय - वाणी प्रकाशन (2004)
13. इन्ही हथियारों से- अमराकांत- राजकमल प्रकाशन (2003)
14. प्रियकांत - प्रताप सहगल - किताबघर प्रकाशन (2010)
15. मुन्नी मोबाईल- प्रदीप सौरभ - वाणी प्रकाशन (2012)
16. ग्लोबल गाँव के देवता - रणेंद्र भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन (2009)
17. तबादला - विभूति नारायण राय राधाकृष्ण प्रकाशन (2016)
18. मुझे पहचानो-संजीव - सेतु प्रकाशन (2020)
19. जीरो रोड - नासिरा शर्मा- वाणी प्रकाशन (2023)
20. आखिरी कलाम-दूधनाथ सिंह, राजकमल प्रकाशन (2006)
21. सिरजनहार - उषाकिरण खान (2012)
22. कैसी आग लगाई- असगर वजाहत, राजकमल प्रकाशन (2016)
23. निर्वासन-आखिलेश, राजकमल प्रकाशन (2014)
24. विनायक - रमेशचंद्र शाह, राजकमल प्रकाशन (2011)
25. रेत समाधि - गीतांजलि श्री - राजकमल प्रकाशन (2022)
26. रह गयीं दिशायें इसी पार - संजीव - राजकमल प्रकाशन (2018)
27. लक्ष्मण रेखा - भगवतीचरण मिश्र- रेख्ता बुक (2008)
28. काशी का अस्सी- काशीनाथ सिंह, राजकमल प्रकाशन (2004)
29. रामघाट में कोरोना- दीर्घ नारायण्ण, किताबघर (2023)
30. ढलती साँझ का सूरज- मधु कांकरिया- राज कमल प्रकाशन (2022)

शोध की परिकल्पना :-

'इक्कीसवीं शताब्दी की चुनौतियाँ और हिंदी उपन्यास' शोध विषय के अंतर्गत इक्कीसवीं शताब्दी के हिंदी उपन्यासों में निहित युगबोध को जानने-समझने का प्रयास किया जाएगा। इस शोध प्रबंध में इक्कीसवीं शताब्दी की चुनौतियों के साथ-साथ सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक बदलाव और विघटन को समझाने का प्रयास किया जाएगा। पर्यावरणीय संकट विशेषकर जल, जंगल जमीन के संकटों को समझने का प्रयास किया जाएगा। आज स्त्रियाँ शिक्षित हो रहीं है तमाम क्षेत्रों में उनकी भागीदारी बढ़ रही है, बावजूद सदियों से जड़ जमाई पितृसत्तात्मक व्यवस्था उनकी आज़ादी को नकार भाव से देख रहा है। स्त्री लेखिका काफी मजबूती से इन बातों को को सामने ला रही है । इक्कीसवीं शताब्दी में जहाँ एक ओर विज्ञान तेजी से प्रगति कर रहा है, वहीं दूसरी ओर पुरुषों के वर्चस्ववादी मानसिकता उजागर होता है, इन पक्षों पर भी विचार किया जाएगा।

इक्कीसवीं शताब्दी के हिंदी उपन्यासों में जीवन-राग तो हैं ही विस्थापन की पीड़ा भी कम कष्टकारी नहीं है। औद्योगिकीकरण ने मजदूरों को रोजगार का नया जरिया दिया। लोगों को खलिहानी व्यवस्था से बहुत हद तक मुक्ति दिलायी है। मजदूरों की स्थिति पहले से अधिक मजबूत हुआ, लेकिन शहरों में भी उनका शोषण बढ़ रहा है। इस शोध प्रबंध में औद्योगिक विकास के चकाचौंध से गायब होते गाँवों को रेखांकित करने का प्रयास किया जाएगा। कृषि संस्कृति में किसान-मजदूरों की बदहाली को समझने की कोशिश की जाएगी। यह भी देखने का प्रयास किया जाएगा कि ग्रामीण विकास की अवधारणा में आज गाँव कहाँ खड़े है। आज के दौर में जहाँ मशीनीकरण के द्वारा कृषि कार्यों को और भी मजबूती से निष्पादित किया जा सकता था बावजूद लोग इस पेशा से दुरी क्यों बना रहे हैं? किसानों की आत्महत्या इस दौर का सबसे बड़ा कलंक है। दशक भर में लगभग लाखों किसानों ने आत्महत्या की है जो किसी बड़े संकट की ओर इशारा करता है। वर्तमान में इन समस्याओं से संबंधित अनेकों उपन्यास है, जिसे इस शोध कार्य में शामिल किया जाएगा।

शोध-प्रविधि :-

इक्कीसवीं सदी को भूमंडलीकरण एवं वैश्वीकरण की सदी भी कहा जाता है। विज्ञान, यंत्रज्ञान, सूचना एवं जनसंचार ने मानव के जीवन को पूरी तरह बदल डाला है, इस तरह के परिवर्तन ने सुविधाओं के साथ- साथ अनेक प्रकार की चुनौतियों को भी जन्म दिया। 'इक्कीसवीं शताब्दी की चुनौतियाँ और हिंदी उपन्यास' सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनितिक दृष्टि से बेहद प्रासंगिक और आवश्यक कार्य है।

प्रस्तावित शोध कार्य में मौलिकता को ध्यान में रखते हुए इस शोध कार्य में तुलनात्मक, विश्लेषणात्मक, समीक्षात्मक, विचारात्मक एवं समाजशास्त्रीय आदि पद्धतियों का प्रयोग किया जायेगा। संदर्भ ग्रंथ, आधार ग्रंथ, शब्द कोश, विश्वकोश इत्यादि के प्रयोग द्वारा शोध कार्य की तथ्यपरक सामाग्री एकत्रित की जाएगी।

प्रस्तावित शोध प्रारूप निम्न अध्यायों में विभाजित होगा:-

इस शोध-प्रबंध में कुल छः अध्याय है। उत्तरोत्तर समय और सामग्री के अनुरूप इन अध्यायों में परिवर्तन किया जा सकता है।

प्रथम अध्याय :-

इक्कीसवीं सदी का युग और युगीन परिवेश

दूसरा अध्याय :-

इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यासों में पर्यावरणीय चिंतन

तीसरा अध्याय -

इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यासों में आर्थिक चिंतन

चौथा अध्याय :-

21वीं शताब्दी के हिंदी उपन्यासों में सामाजिक एवं राजनीतिक चेतना

पचम अध्याय:-

इक्कीसवीं शताब्दी के उपन्यासों में पलायन एवं विस्थापन की समस्या

छठा अध्याय :-

इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यासों में स्त्री एवं दलित चेतना

उपसंहार :-

सन्दर्भ ग्रंथ-सूची:-

1. गोपाल राय- उपन्यास की संरचना- राजकमल प्रकाशन (2006)
2. रामचंद्र तिवारी- हिदी उपन्यास- वि. वि. प्रकाशन वाराणसी (2010)
3. नामवर सिंह- आधुनिक हिंदी उपन्यास, राजकमल प्रकाशन 2010
4. मधुरेश- हिंदी उपन्यास का विकास, लोक भारती प्रकाशन (2014)
5. पुष्पपाल सिंह- 21 वीं सदी का हिंदी उपन्यास, राजकमल प्रकाशन (2018)
6. राजेन्द्र यादव- उपन्यास स्वरूप और संवेदना- वाणी प्रकाशन (1937)
7. प्रभा खेतान-आधुनिक परिवश में स्त्री
8. प्रभा खेतान - भूमंडलीकरण ब्रांड संस्कृति और राष्ट्र सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली 2010
9. डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव - 21 वी सदी की दहलीज पर औपन्यासिक दस्तक- ओमेगा पब्लिकेशन्स
10. काशीनाथ नाथ सिंह - काशी का अस्सी-(2005)
11. अलका सराबगी - एक ब्रेक के बाद अलका सराबगी (2008)
12. रणेन्द्र -ग्लोबल गाँव की देवता- (2010)
13. कमला कांत त्रिपाठी - बेदखल, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली (2007)
14. जगदीश चंद्र माथुर - धरती धन न अपना - आधार प्रकाशन (2013)
15. संजीव - फाँस - वाणी प्रकाशन (2015)
16. वीरेन्द्र जैन - आधुनिक हिंदी उपन्यास
17. कमल नयन कांवरा - भूमंडलीकरण के भंवर में भारत
18. डॉ. उत्तम भाई पटेल- स्वातन्त्रयोत्तर हिंदी उपन्यास में कृषक जीवन

पत्र-पत्रिकाएँ:-

1. हंस
2. आजकल
3. सेतु
4. कथा साहित्य
5. वङ्ग्मय
6. वागर्थ
7. पहल
8. कथादेश
9. सहयोग
10. सबद निरंतर

शब्द कोष:-

1. हिंदी अंग्रेजी शब्दकोप, डॉ हरदेव बाहरी (राजपाल एड सन्स)
2. हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली - डॉ अमरनाथ
3. डॉ वासुदेव नंदन प्रसाद, आधुनिक हिंदी व्याकरण और, रचना।

शोध निर्देशक

प्रो० (डॉ०) विजय कुमार
हिन्दी विभाग
सह-प्रोफेसर इन्चार्ज
सब-डिविजनल गवर्नमेट डिग्री कॉलेज
बेनीपुर, दरभंगा

अनुसंधायिका

वीणा कुमारी
पैट क्रमांक- 22090538
ग्राम- सिरुआ, थाना बहेड़ी,
जिला-दरभंगा, पिन -847101

प्रो० (डॉ०) विजय कुमार
हिन्दी विभाग
सह-प्रोफेसर इन्चार्ज
सब-डिविजनल गवर्नमेंट डिग्री कॉलेज
बेनीपुर, दरभंगा
मो०- 9334675596

बिहार सरकार

Prof. (Dr.) Vijay Kumar
Deptt. of Hindi
Cum-Prof-Incharge
Sub-Divisional Government
Degree College, Benipur
Darbhanga

पत्रांक : ....   दिनांक : ....

सहमति–पत्र

वीणा कुमारी, शोधार्थी, विषय- हिंदी, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा PAT Roll No.- 220905388, Class Roll No.- 52 द्वारा प्रस्तावित शोध विषय– ‘इक्कीसवीं शताब्दी की चुनौतियाँ और हिंदी उपन्यास’ पर मैं पर्यवेक्षण हेतु समति प्रदान करता हूँ।

मैं इनके उज्ज्वल भविष्य की कामना करता हूँ।

प्रो० (डॉ०) विजय कुमार

शोध पर्यवेक्षक

ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, कामेश्वरनगर, दरभंगा

इक्कीसवीं शताब्दी की चुनौतियाँ और हिंदी उपन्यास

शोध-विषय पर संक्षिप्त विवरण

आज मानव के सामने खड़ी चुनौतियों मनुष्य के अति महत्वाकांक्षा से उत्पन्न हुई है जिसमें भौतिकतावादी आग्रह ने मनुष्य के आध्यात्मिक चेतना को दबा सा दिया है। वर्ण भेद वर्ग भेद सांप्रदायिकता आदि की चुनौतियां पिछली सदी से चली आ रही है उत्तर-आधुनिकता की दौड़ में भी समाप्त नहीं हुई बल्कि विकास के अंत दौड़ने नई चुनौतियों को सामने ला खड़ा किया ग्लोबलाइजेशन बाजारवाद, पूंजीवाद, सूचना प्रौद्योगिकी का परिचय वर्चस्व आदि ने मिलकर आदमी को उपभोक्ता मात्रा में बदलकर रख दिया है उसे सबके ऊपर मानव के अस्तित्व का संकट जो कोविद-19 से उत्पन्न हुआ सबसे गंभीर है इन कॉविड-19 मानव की अमरता की लालसा आपसी संबंध व्यवसाय तथा रोजी-रोटी को बुरी तरह प्रभावित किया है सभी चुनौतियों की धमक इक्कीसवीं सदी में रचित हिंदी उपन्यासों में सुनाई पड़ती है जिन लोगों ने इन चुनौतियों को केंद्र में रखकर अपने-अपने उपन्यासों की रचना की है उनमें उनका संदर्भ चेतावनी भरा और मानवीय है। यह उपन्यास अपनी यथार्थ पड़ता में सामाजिक विषमता संप्रदायवाद आदि का प्रतिरोध करने के साथ-साथ पर्यावरण तथा मानव सुरक्षित भविष्य की पक्षधर्ता करते हैं इन उपन्यासों की समालोचना से चुनौतियों की भयावता का पता चलता है और पाठक को भविष्य के प्रति अगाह करते नजर आते हैं।

शोध निर्देशक

प्रो० (डॉ०) विजय कुमार
हिन्दी विभाग
सह-प्रोफेसर इन्चार्ज
सब-डिविजनल गवर्नमेट डिग्री कॉलेज
बेनीपुर, दरभंगा

अनुसंधायिका

वीणा कुमारी
पैट क्रमांक- 22090538
ग्राम- सिरुआ, थाना बहेड़ी,
जिला-दरभंगा, पिन -847101